

Date: 15-08-18



दैनिक भास्कर

आर्थिक व राजनीतिक तरक्की बड़ी उपलब्धि

राजीव कुमार, (उपाध्यक्ष, नीति आयोग)

1947 से हम यानी भारतीयों ने तीन ऐतिहासिक बदलाव देखे, जिसमें आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक बदलाव महत्वपूर्ण हैं। यही लक्ष्य आजादी के समय रखे गए थे। तब की तुलना में आज कई क्षेत्रों में हमने उल्लेखनीय प्रगति की है, जो महत्व रखती हैं। विश्व के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ था कि तीनों इतने बड़े लक्ष्य रखे गए, उनका बीड़ा उठाया गया। बहुत से देशों ने एक के बाद एक ऐसे लक्ष्य रखें और बहुत से देश यह हासिल नहीं कर सके। चीन को ही देखें, वहां अब तक राजनीतिक परिवर्तन हुआ ही नहीं है। हमारे राजनीतिक बदलाव के बारे में यह कहा जाता था कि हिन्दुस्तान ने जो जनतांत्रिक व्यवस्था अपनाई है, वह कारगर नहीं हो पाएगी, विफल हो जाएगी क्योंकि न तो यहां साक्षरता ज्यादा है, न लोगों की आय, कोई डेवलपमेंट नहीं है। इसके बावजूद विपरीत परिस्थितियों में हमने 1947 से अब तक उल्लेखनीय बदलाव करके दिखाए। आज दुनिया हमारे लोकतंत्र का मॉडल देख रही है।

आज हमारा लोकतंत्र न केवल बहुत अच्छी स्थिति में है, बल्कि बहुत शक्तिशाली लोकतंत्र के रूप में दुनियाभर में जाना जाता है। हमने दुनिया को दिखा दिया है कि एक विकासशील देश भी लोकतांत्रिक प्रणाली न केवल अपना सकता है, बल्कि उसके मूल्यों को सुदृढ़ बना सकता है। अगर आप लैटिन अमेरिका, एशिया के कई देश और अफ्रीका में देखेंगे तो पाएंगे कि जहां-जहां लोकतांत्रिक प्रणाली अपनाई गई, वह अधिकांश जगह विफल हो गई। सामाजिक परिवर्तन की दिशा में हमने बिना किसी हिंसा या खून-खराबे के बड़ा बदलाव हासिल किया है। आप देखिए, सबसे बड़े राज्य में दलित वर्ग की महिला चार बार मुख्यमंत्री बन चुकी हैं। हमारी लोकसभा अध्यक्ष दलित रही हैं, हमारे राष्ट्रपति भी दलित रहे हैं। कई राज्यों में दलित मुख्यमंत्री भी रहे हैं। मौजूदा राष्ट्रपति भी दलित हैं। बिना किसी क्रांति के पूरी सामाजिक व्यवस्था पलट देना, कम उपलब्धि नहीं है। दलितों के शोषण जैसी कोई बात हमारी व्यवस्था में नहीं है। 1947 में हमारे यहां सामंतवाद भी था, लेकिन तब से अब तक हमने जो कुछ हासिल किया, वह बिना क्रांति के हासिल किया, यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। इस पर हमें गर्व करना चाहिए।

आर्थिक मोर्चे पर बड़ा बदलाव हमारे देश ने खुद हासिल किया है। 1947 में जब स्वतंत्रता मिली, तब हमारी जीडीपी के अनुसार प्रति व्यक्ति आय 150 डॉलर (तब की स्थिति में तकरीबन 9000) थी, जो आज 2000 डॉलर (1.30 लाख से अधिक) है। तब हम कई क्षेत्रों में मजबूर थे, जिसमें खाद्यान्न भी शामिल है। 1960 के दशक में बिहार में अकाल की स्थिति थी, हम बहुत सारा खाद्यान्न आयात करते थे। राज्यों को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न नहीं मिल पाता था। हमारे पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने लोगों से एक दिन व्रत रखने की अपील की थी। उस हालत को देखिए और आज देखिए, हमारे खाद्यान्न भंडार भरे पड़े हैं। आज मध्य प्रदेश सहित कई राज्य खाद्यान्न उत्पादन में बहुत आगे हैं। यही कारण है कि आज कोई यह नहीं कह सकता कि हम अपने नागरिकों को खाद्यान्न सुरक्षा प्रदान करने में कहीं चूके हैं या उसमें कोई कमी है। तब हमारी मर्यादाएं बहुत थीं, आज स्थिति बिल्कुल अलग है। 1947 के बाद से अब तक हमारे यहां हरित क्रांति भी हो गई, श्वेत क्रांति भी हो गई। आज हमारे यहां पर्याप्त मात्रा में दूध का उत्पादन होता है।

गरीबी के स्तर पर देखिए, देश ने 1940 का दशक भी देखा। 1942 में बहुत मुश्किल स्थिति का सामना किया, आज हम गरीबी उन्मूलन की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। यही कारण है कि आज गरीबी-अमीरी की खाई हमारे यहां बहुत बड़ी नहीं है। हमने वित्त आयोग की सिफारिशें लागू कीं, कई कार्यक्रम अपनाए, उनका लाभ हमें मिला। सभी क्षेत्रों के विकास पर हमने ध्यान दिया और उसमें सफलता हासिल की, इसमें लोगों का जीवनस्तर उठाना भी शामिल है।

राजनीतिक और सामाजिक बदलाव की तुलना में आर्थिक बदलाव अभी पूरा नहीं हुआ, हम मध्य में हैं, क्योंकि हमने इसे सुचारू रूप से नहीं चलाया। 1980 में चीन और हमारी निजी आय बराबर थी। हम कई क्षेत्रों में उससे आगे थे परंतु आज चीन की निजी आय (पर कैपिटल इनकम) हमसे पांच गुना ज्यादा है। यह विचारणीय है कि ऐसा क्यों हुआ और अब हमें क्या करने की जरूरत है। हमारे सामाजिक और राजनीतिक बदलाव के लक्ष्य इसलिए पूरे हो सके, क्योंकि महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने इसे जनआंदोलन बनाया। आंबेडकर, नेहरू जैसे कई नेताओं ने इसे आगे बढ़ाया। आर्थिक विकास को हम जनआंदोलन नहीं बना पाए। आज मौजूदा प्रधानमंत्री ने 'नए भारत' का आह्वान किया है, 2022 तक उस लक्ष्य को पूरा करना है जो बहुत जरूरी है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति को नए भारत की कल्पना करनी चाहिए। इसके लिए हम इस स्वतंत्रता दिवस पर यह संकल्प कर सकते हैं कि हम जो भी कर रहे हैं, उसमें देश का कितना विकास हो रहा है, यह देखें। इससे पता चलेगा कि हम देश के विकास के लिए काम कर रहे हैं कि नहीं। हम इस पर फोकस करें कि जो भी कर रहे हैं उसमें देश का विकास एवं युवक-युवतियों के लिए नौकरियां पैदा हों, तो हमारी सारी नीतियां अच्छी बन जाएंगी। सभी राज्य एकजुट होकर काम करेंगे और सफल होंगे। हमारे में सामर्थ्य है, हम सक्षम हैं, हमारे में ऐसी कोई कमी नहीं कि यह लक्ष्य पूरा न कर सकें।

यह कहना गलत होगा कि हमारा आर्थिक विकास नहीं हुआ। लोहा, सीमेंट, बिजली उत्पादन, सर्विस सेक्टर, कारखाने, उद्योग, आईटी आदि क्षेत्रों में हमने उल्लेखनीय प्रगति हासिल की है। कई देशों से हम आगे हैं परंतु हमें अभी और आगे बढ़ना है। यह लक्ष्य भी हो कि 2047 में जब आजादी के 100 वर्ष पूरे हों, तब हम दूसरी बड़ी आर्थिक शक्ति बनकर उभरें। जब ऐसा हो जाएगा तब हम पूरी दुनिया में आदर्श बन जाएंगे कि कैसे हिन्दुस्तान ने सभी को साथ लेकर अपना सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास किया।

हमारे लोकतंत्र को शंका की नज़रों से देखा गया था, आज वही लोकतंत्र न केवल मजबूत है, बल्कि शक्तिशाली है और दुनियाभर में उदाहरण माना जाता है। हमने बिना खून-खराबे या क्रांति के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बदलाव के लक्ष्य हासिल किए, यह उल्लेखनीय प्रगति है जिस पर गर्व किया जाना चाहिए।

Date: 15-08-18

जनस्वास्थ्य नीतियों का सुफल है बड़ी जनसंख्या

एआर नंदा, (पाँपुलेशन एक्सपर्ट व पूर्व स्वास्थ्य सचिव)

1947 में हमारी जनसंख्या सिर्फ 32 करोड़ थी, जो 2018 में लगभग 132 करोड़ हो चुकी है। यानी पिछले 70 वर्षों में देश की आबादी करीब 100 बढ़ी है। इसे देश के विकासक्रम की प्रक्रिया में देखा जाना चाहिए। 1947 में जीने की जो

औसत आयु थी वह 32 से 35 थी जो अब 65 से 70 हो चुकी है, जबकि 1000 में जो मृत्यु दर 30 थी वह अब मात्र 7-8 रह गई है। वहीं आजादी के वक्त शिशु मृत्युदर 130 से 140 के बीच थी जो अब 37-38 रह गई है। हालांकि, इसे भी विश्व स्वास्थ्य पैमाने पर बहुत खराब माना जाता है।

जीने की बढ़ी आयु बताती है कि देश ने स्वास्थ्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विकास किया है। जनस्वास्थ्य को लेकर जो सरकारी नीतियां रही हैं उनकी भूमिका बड़ी ही प्रभावकारी रही है। लेकिन उन प्रभावकारी नीतियों का परिणाम है कि पहले एक दंपती के कम से 5 से 6 बच्चे होते थे, जो अब घटकर औसत 2.3 रह गया है। यहां एक अंतर्विरोध समझने की जरूरत है, जिसका गहरा रिश्ता आबादी, प्रजनन क्षमता और मुल्क के विकास के जुड़ा है। जैसे-जैसे हमारे देश में औसत मृत्युदर कम हुई, वैसे-वैसे लोगों ने बच्चों को जन्म देना कम कर दिया।

कहने का मतलब ये कि देश की स्वास्थ्य और आर्थिक व्यवस्था जैसे-जैसे अपने नागरिकों को सक्षम करती जाएगी, आबादी अपने आप कम होती जाएगी और एक समय ऐसा आएगा जब आबादी का जीरो प्वाइंट होगा, जैसा कि इन दिनों यूरोप-अमेरिका के देशों में बना हुआ है। इसकी शुरुआत भारतीय महानगरों के मध्यवर्गीय परिवारों में दिख रही है।

दूसरी तरफ रोजगार में लगी बहुत-सी लड़कियां बच्चों को जन्म देने के प्रति उदासीन हैं। बावजूद इसके 2050 से 2060 तक भारत की आबादी क्रमशः, लेकिन कम गति से बढ़ती रहेगी और इन वर्षों के आते-आते आबादी 155 से 160 करोड़ हो जाएगी। इस बीच बड़ा नुकसान प्रजनन क्षमता कम होने का होगा, जो अभी तो बेहतर लगेगा, लेकिन 2050 आते-आते बुजुर्गों का प्रतिशत आबादी में 60 से अधिक होगा। सरकार को अभी से आबादी के बदलते डेमोग्राफी के हिसाब से योजनाएं बनानी शुरू कर देनी चाहिए, क्योंकि हमारा देश मानव संसाधन की सबसे उर्जावान आबादी का देश है, यहां 18 से 40 वर्ष के बीच के 60 फीसदी युवा हैं। अब मैं फिर उस बात पर आता हूं कि आबादी को कभी अभिशाप या वरदान की तरह नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि किसी देश में आबादी की उपस्थिति संसाधन के रूप में होती है। फिर भारत में तो प्रचुर प्राकृतिक साधनों के बीच अगर इनका उपयोग हो तो यह देश सच में दुनिया के शिखर पर होगा। पर कोई मुल्क अपने मानव संसाधन का बेहतर इस्तेमाल नहीं कर पाता है तो वह दोष आबादी का नहीं, मुल्क की बागडोर थामे लोगों का है, जो 70 वर्षों की आजादी के बाद भी अपने सबसे बेहतरीन साधन को कबाड़ समझते हैं, देश का भार मानते हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 15-08-18

पारिस्थितिकी संकट से वापसी मुश्किल

श्याम सरन

इन गर्मियों में यूरोप और यूरोप के समशीतोष्ण क्षेत्र के वनों में भीषण आग लगी। स्पेन में तापमान 47 डिग्री सेल्सियस तक जा पहुंचा। यह यूरोप के अपेक्षाकृत ठंडे इलाके के बजाय राजस्थान के रेतीले इलाकों से अधिक मेल खाता है। जापान के कई हिस्सों में भारी बाढ़ आई। दुनिया भर में चक्रवात और तूफान की आवृत्ति और उनकी तीव्रता में बढ़ोतरी हुई है। वैश्विक तापमान में तेज इजाफा हुआ है। विश्व इतिहास के 17 सबसे गर्म वर्ष 2001 के बाद सामने आए हैं। बर्फ और

ग्लेशियर के पिघलने की घटनाओं में भी तेजी आई है। नासा के मुताबिक अंटार्कटिका में पिघलने वाली बर्फ की मात्रा वर्ष 2012 के बाद से तीन गुनी हो चुकी है। इतने कम समय में ही समुद्री जल स्तर में 3 मिमी का इजाफा देखने को मिला है। नासा का अनुमान है कि वर्ष 2012 के पहले दुनिया के ग्लेशियर और बर्फ के पिघलने की दर 76 अरब टन वार्षिक थी। वर्ष 2012 के बाद से यह दर 219 अरब टन वार्षिक हो चुकी है।

वहीं समुद्री जल स्तर 0.3 मिमी वार्षिक के वैश्विक स्तर से दोगुना बढ़कर 0.6 मिमी वार्षिक हो गया है। इस दृष्टि से देखें तो फिलहाल जितनी भी बर्फ अंटार्कटिका में बर्फ की चादरों में लिपटी हुई है, वह अगर पिघल कर समुद्र में मिल जाए तो समुद्र के स्तर में 58 मीटर का इजाफा होगा और दुनिया के अधिकांश प्रमुख शहर, तटीय इलाके और द्वीप डूब जाएंगे। वैश्विक तापवृद्धि का संबंध पृथ्वी के वातावरण में एकत्रित ग्रीन हाउस गैसों से है जिनमें कार्बन डाइऑक्साइड प्रमुख है। नासा के मुताबिक मौजूदा घनत्व 408 पीपीएम (पाइस पर मिलियन) है। मौजूदा औद्योगिक युग की शुरुआत के पहले यह 280 पीपीएम था। सन 1880 से तुलना करें तो औसत वैश्विक तापमान में एक डिग्री सेल्सियस का इजाफा हो चुका है। वैज्ञानिक इस बात पर एकमत हैं कि अगर तापमान 2 डिग्री सेल्सियस से अधिक बढ़ा तो बहुत बड़ी आपदा आ सकती है। हमारी पृथ्वी की पारिस्थितिकी को ऐसा नुकसान हो सकता है जिसे सुधारना संभव नहीं होगा।

हालांकि 2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि और कार्बन उत्सर्जन के घनत्व के रिश्ते को लेकर अस्पष्टता है लेकिन 480 पीपीएम के आंकड़े पर सब सहमत हैं। यानी अगर वातावरण में मौजूद कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन में 72 पीपीएम का इजाफा और होता है तो पर्यावरण को इस कदर नुकसान हो जाएगा कि उसमें सुधार करना संभव नहीं रह जाएगा। परंतु ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो एक डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी में ही हम संकट में हैं। आशंका तो यही है कि हमारा खराब भविष्य एकदम करीब आ चुका है। ऐसा इसलिए क्योंकि जलवायु में होने वाला परिवर्तन दुनिया भर में बड़े पैमाने पर पर्यावरण को पहुंच रही क्षति से जुड़ा हुआ है। समुद्रों में लाखों टन अपघटनीय प्लास्टिक का कचरा डाला जा रहा है। हमारे वन खत्म हो रहे हैं और नदियां रासायनिक गंदे नाले में बदल रही हैं।

शहरी कचरे के ढेर मीथेन के खतरनाक भंडार बन चुके हैं। जलवायु परिवर्तन को लेकर इनका प्रभाव कार्बन डाइऑक्साइड से भी अधिक है। जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण के स्तर में आ रही गिरावट का गहरा संबंध है जो दोनों के असर को बढ़ा रहा है। यह तब है जबकि हम पृथ्वी के पर्यावास में घटित हो रही अन्य चिंताजनक बातों को ध्यान में रखकर बात नहीं कर रहे हैं। जलवायु परिवर्तन को लेकर किए गए हालिया अध्ययन के मुताबिक करीब 20-30 प्रतिशत पौधे और जीव प्रजातियां विलुप्त होने के जोखिम की शिकार हैं। इसमें मानवीय घुसपैठ और ताप वृद्धि के कारण हमारी आदतों में हो रहा बदलाव दोनों शामिल हैं। यह ध्यान देने वाली बात है कि वैश्विक तापवृद्धि की समस्या वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड और ग्रीन हाउस गैसों के एकत्रित होने से उपजी है। फिलहाल हो रहा उत्सर्जन इन गैसों के भंडार में और इजाफा कर रहा है लेकिन वह अपने आप में वैश्विक तापवृद्धि की वजह नहीं है।

इतना ही नहीं, चूंकि कार्बन उत्सर्जन का भंडार कई दशकों में बहुत धीरे-धीरे पर्यावरण में घुलता है इसलिए अगर इसमें बढ़ोतरी को समाप्त भी कर दिया जाए तो भी वैश्विक तापवृद्धि का सिलसिला जारी रहेगा और इसके परिणाम दीर्घावधि के होंगे। इस लिहाज से देखें तो पेरिस जलवायु परिवर्तन समझौते में कार्बन उत्सर्जन कम करने पर जो जोर दिया गया है वह इस समस्या का आंशिक उत्तर ही देता है। पर्यावरण में आ रही गिरावट को पलटना भी महत्वपूर्ण है क्योंकि बिगड़ता पर्यावरण जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कई गुना बढ़ा देता है। उदाहरण के लिए व्यापक प्रदूषण के चलते समुद्र की कार्बन डाइऑक्साइड खपत करने की क्षमता कम हुई है।

वैज्ञानिक प्रगति और हमारे रोजमर्रा के अनुभवों ने यह जागरूकता बढ़ाई है कि हम सब आपस में पूरी तरह संबद्ध पारिस्थितिकी में निवास करते हैं। यहां एक हिस्से में पैदा हुई समस्या अन्य हिस्सों के लिए परेशानी बन सकती है। संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्य इसे समझते हैं लेकिन अधिकांश अंतरराष्ट्रीय बहस और मानक निर्धारण अभी भी इससे दूर हैं। विभिन्न देश अपने हितों की रक्षा के लिए काम करते हैं, वे अपने दायित्व कम करना चाहते हैं और पूरा बोझ दूसरों पर डालना चाहते हैं। जलवायु परिवर्तन पर भी यही बात लागू होती है। दशकों से जीवाश्म ईंधन जलाकर कार्बन डाइऑक्साइड को मौजूदा स्तर पर पहुंचाने के उद्देश्य से उत्तरदायी देश अपनी ऐतिहासिक जवाबदेही स्वीकार करने से इनकार कर रहे हैं। वे भारत जैसे देशों से अपेक्षा कर रहे हैं कि वे अपने विकास की संभावनाओं को तिलांजलि देकर जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करें।

द इकनॉमिस्ट पत्रिका ने अपने ताजा अंक में भारत की आलोचना की है कि उसे कोयले से ज्यादा ही लगाव है और यह बात जलवायु परिवर्तन से निपटने में बाधक बन रही है। हकीकत में भारत की कोयला आधारित ताप विद्युत क्षमता आज भी केवल 192 गीगावॉट है जबकि चीन में यह 940 गीगावॉट है और वह 200 गीगावॉट क्षमता तैयार कर रहा है। जापान ने बीते दो वर्ष में आठ नए संयंत्र लगाए हैं और अगले एक दशक में 36 नए संयंत्र लगाने जा रहा है। सन 2030 तक कोयला आधारित विद्युत उत्पादन कुल उत्पादन का 26 फीसदी होगा जबकि लक्ष्य 10 फीसदी का है। भारत को खुद को निशाना बनाए जाने से तो बचना ही होगा, साथ ही एक व्यापक पारिस्थितिकी समझौते के लिए काम करना होगा जो विश्व के पर्यावास को बचाने में सहायक हो, बजाय कि केवल जलवायु परिवर्तन से निपटने के। फिलहाल तो मनुष्य के अस्तित्व को ही चुनौती उत्पन्न हो गई है। ऐसे में इस पहल को तत्काल उठाया जाना अनिवार्य हो चुका है।

Date: 15-08-18

पहले तैयारी तो कीजिए

संपादकीय



भारत में राष्ट्रीय स्वास्थ्य सुरक्षा अभियान 'आयुष्मान भारत' का ऐलान जल्द होने वाला है। संभवतः प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के स्वतंत्रता दिवस संबोधन में ही इसकी घोषणा कर दी जाए। नई योजना को प्रायोगिक तौर पर शुरू करने के लिए छह राज्य तैयार हैं। हालांकि इस योजना से जुड़े ब्योरे की जानकारी बहुत कम है। पहले माना जा रहा था कि यह योजना बीमा-आधारित प्रणाली पर चलेगी लेकिन ऐसा लगता है कि आयुष्मान भारत योजना को न्यास-आधारित व्यवस्था या निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र

की मिश्रित प्रणाली के जरिये चलाने में राज्यों की कहीं अधिक भूमिका होगी। संभव है कि हरेक राज्य अपनी परिस्थितियों के हिसाब से उपयुक्त प्रणाली के चयन पर अलग नजरिया अपनाए। इससे योजना के शुरुआती दौर में लचीलापन आएगा और विभिन्न मॉडल को लेकर प्रयोग भी किए जा सकेंगे।

हालांकि अभी तक उपलब्ध जानकारी के अनुसार, इस योजना का ध्यान मुख्यतः तृतीयक स्वास्थ्य सेवा यानी अस्पताल में इलाज पर होगा। एक बड़ी जनसंख्या के लिए अस्पताल में इलाज का कैशलेस इंतजाम हो सकता है लेकिन संभावित लाभार्थियों की हाल में सूची नहीं बनने से आगे चलकर काफी विवाद हो सकते हैं। ऐसा लगता है कि सरकार इस योजना के क्रियान्वयन में जल्दी में है। इसकी वजह यह भी हो सकती है कि सत्तारूढ़ भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने सार्वभौम स्वास्थ्य देखभाल को अपने घोषणापत्र में प्रमुखता से जगह दी थी और अगले आम चुनावों के करीब आते जाने से मतदाता इस बारे में उससे सवाल पूछ सकते हैं। इस योजना को जल्द लागू करने की सरकार की मंशा की तारीफ की जानी चाहिए लेकिन हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि इतने बड़े पैमाने पर लागू होने जा रही और अर्थव्यवस्था के बड़े हिस्से को बदलने वाली योजना समुचित तैयारी के बगैर ठीक से लागू नहीं की जा सकती है। वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के अमल से जुड़ा अनुभव सरकार के लिए चेतावनी भरा सबक होना चाहिए।

इस संदर्भ में दो बिंदुओं पर गौर करना अहम है। तृतीयक स्तर की स्वास्थ्य देखभाल सेवा देने वाली योजना अस्पतालों में बिस्तर और चिकित्सा विशेषज्ञों की संख्या बढ़ाने की कोशिशों के बगैर कारगर नहीं हो सकती है। लेकिन अभी तक इस दिशा में ऐसा नहीं हुआ है। फिलहाल प्रशिक्षित स्टाफ, अस्पतालों और डायग्नोस्टिक सेंटर की भारी किल्लत है और राज्यों के भीतर एवं बाहर इनका असमान वितरण होने से समस्या और विकट हो जाती है। खास तौर पर डॉक्टरों की बेहद कमी है। हालत यह है कि भारत में जरूरत लायक प्रशिक्षित डॉक्टरों की 75 फीसदी कमी है। ऐसे में योजना शुरू होने के बाद काबिल डॉक्टरों की आपूर्ति अचानक सुधर जाने की उम्मीद करना आशावादी ही होगा। यह एक अनियोजित विस्तार का सबब बनेगा और उससे जुड़ी जटिलताएं एवं अक्षमताएं भी सामने आएंगी। जिन देशों में स्वास्थ्य देखभाल योजना लागू की गई हैं, उन्होंने उनके क्रियान्वयन के पहले वर्षों तक तैयारी की।

सरकार को आयुष्मान भारत योजना के चरणबद्ध क्रियान्वयन का खाका पेश करने के साथ ही यह भी बताना चाहिए कि वह स्वास्थ्य ढांचे की खाई भरने की तैयारी किस तरह कर रही है? दूसरा बिंदु, स्वास्थ्य देखभाल से संबंधित समग्र दृष्टिकोण कहता है कि सरकारी प्रयासों एवं वित्तपोषण का ध्यान असल में प्राथमिक स्वास्थ्य पर होना चाहिए। प्राथमिक स्वास्थ्य पर ध्यान दिए जाने से अधिकतम लाभ लिए जा सकते हैं। प्राथमिक एवं सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों में प्रशिक्षित कर्मियों एवं धन की कमी है। ऐसे में सरकार से यह सवाल पूछा जाना चाहिए कि प्राथमिक स्वास्थ्य में व्यवस्थागत सुधार करना सार्वभौम स्वास्थ्य देखभाल की तरफ बढ़ने वाला पहला कदम क्यों नहीं है? इन आपत्तियों के बावजूद सरकार और प्रधानमंत्री मोदी को नीतिगत एजेंडा के केंद्र में स्वास्थ्य को रखने के लिए श्रेय दिया जाना चाहिए।

Date: 14-08-18



Death of a Marxist

Egyptian economist Samir Amin observed the dangers of our world but also its possibilities

Vijay Prashad, (Vijay Prashad is the Chief Editor at LeftWord Books and the Director of Tricontinental: Institute for Social Research)

On Sunday, August 12, Samir Amin died. With him went a generation of Egyptian Marxists who came of age in the time of Nasserism and departed with the world in tatters. Amin was born in 1931 in Cairo. He was doing his PhD in Paris when Gamal Abdel Nasser and the Free Officers overthrew the British-dominated monarchy in Egypt in 1952 and directed their country towards a path of non-alignment. Amin's thesis — in economics — was written while he was active in the French Communist Party. In the thesis, he thought hard about the problems of his native land and other countries despoiled by the colonial menace. For Amin, as with other dependency theorists, the Third World suffered from theft, plunder as well as deindustrialisation, and then unequal exchange.

The policy space for the new Third World states — Nasser's Egypt amidst them — was narrow. Emancipation would be difficult. It would take courage to break the yoke of monopoly capitalism, to rise from the penalty of colonialism and advance towards a necessary socialist future. Amin, like others in his generation such as India's Ashok Mitra and Brazil's Celso Furtado, did not go immediately into the academy. He went home to Cairo, where he worked in Nasser's Institute for Economic Management (1957-1960) and then to Bamako (Mali), where he worked as an adviser in the Ministry of Planning (1960-1963). Amin would talk fondly of these years, of the experience he had in trying to move an agenda for the development of his country and that of other African countries. The limitations set by the powerful countries of the world — the imperialist bloc led by the U.S. — and by the system of monopoly capitalism prevented any major breakthrough for states such as Egypt and Mali. Amin's first book, published in the 1960s, was on the experience of development undertaken by Mali, Guinea and Ghana.

It warned against any facile belief in progress. The unequal system in the world generated profits for the powerful and generated poverty for the weak. In his most important book, *Accumulation on a World Scale* (1970), which propelled him into the front ranks of dependency theory, Amin showed how resources flowed from the countries of the periphery to enrich the countries of the core through a process that he called 'imperialist rent'. When the system changed in the 1970s, Amin tracked these changes empirically and theoretically. It was in this period that he wrote *Delinking: Towards a Polycentric World* (1985), in which he called for the disengagement of countries of the periphery from the development agendas and pressures from the countries of the core.

Era of greater chaos

With the fall of the U.S.S.R. and the rise of the U.S. to unparalleled power, Amin wrote of the 'empire of chaos', of a new era that would result in great inequality, precarious labour, the destruction of agriculture

and the dangers of political religion. What Amin tracked in 1992 would become clear two decades later, when he revisited these same themes in *The Implosion of Contemporary Capitalism* (2013). Monopoly firms had sucked the life out of the system, turning businesspeople into ‘waged servants’ and journalists into the ‘media clergy’. An unsustainable world system, with finance in dominance and people whipping from one precarious job to another, seemed to threaten the future of humanity. He surveyed the world and found no real alternative to the monopoly-dominated system that — like a vampire — sucked the blood out of the world. This did not mean that history was to drive humanity over the precipice. Other choices lay before us.

For the past 40 years, Amin was based in Dakar (Senegal), where he led the Third World Forum. Here, he looked out of his window and observed the dangers of our current world, but also its possibilities. This year is the 200th anniversary of Karl Marx’s birth. In one of his last texts, to honour Marx, Amin reflected on a line from *The Communist Manifesto* — that the class struggle always results “either in a revolutionary reconstitution of society at large, or in the common ruin of the contending classes”. This sentence, he wrote, ‘has been at the forefront of my thinking for a long time’. He was not interested in defeat: “The uninterrupted revolution,” he wrote, “is still on the agenda for the periphery. Restorations in the course of the socialist transition are not irrevocable. And breaks in the imperialist front are not inconceivable in the weak links of the centre.”

However bad the situation — harshness and ugliness everywhere — our struggles were unbeaten and our futures uncharted. As long as we are resisting, he would say, we are free.

Date: 14-08-18

Making ‘lateral entry’ work

How India can tap into new sources of leadership talent

Rajeev Vasudeva & Pallavi Kathuria, (Egon Zehnder is a leading global leadership advisory and executive search firm. Rajeev Vasudeva is its Global CEO; Pallavi Kathuria is its India Managing Partner)



Most CEOs are grappling with one particular challenge, irrespective of industry or geography: getting the right leadership talent. Governments face this challenge too. The Indian government has responded to this challenge by taking the initiative to invite executives from beyond the ranks of the civil service to apply for certain Joint Secretary posts. While the idea clearly has merit, success is not automatically guaranteed. At Egon Zehnder we have worked extensively with governments around the world on similar initiatives, and have identified five elements that increase the chances of success.

Establish objective criteria: The key decision makers involved in making a senior appointment rarely agree on what skills, qualities and experiences the role requires— and when they do, there is no guarantee that the requirements agreed to are the ones that are actually needed to be successful. This is

why the process must begin with a real probing of the position and its larger context. For example, prior to one county's national elections, we were asked to establish the hiring criteria for 100 key governmental appointments. We interviewed current and former officeholders; mapped strategic priorities; and factored in the cultural differences between ministries. The result: a foundational talent strategy that could be used by whichever party won.

Having objective criteria also gives decision makers confidence that their appointments will be able to stand up to public scrutiny without fear of seeming biased towards or against candidates for caste, geography, political affiliation or other considerations. Target the talent you need: Public announcements inviting lateral entry applicants for open government positions preserve transparency but are not very effective recruiting strategies. Top talent has many options outside of public service. Government, therefore, cannot sit back and wait for these candidates to present themselves. It must proactively identify and approach executives with the desired skills and experience. Precisely because the competition for talent is so intense, most successful corporations — even those regarded as highly desirable employers — follow this strategy. Very often governments are reluctant to follow suit so as to not appear to favour candidates. This is where the objective criteria come in. The fact that a given executive is approached and encouraged to apply is no guarantee that he or she will be appointed.

We worked with a freshly installed administration in Latin America to build an extensive database of hundreds of private sector leaders considered to have the skills necessary to help fight the country's urgent economic and social challenges. These executives were then proactively invited to apply and added to the pool of open application candidates. We then assessed this expanded group and recommended numerous successful candidates to key roles. Look for potential to succeed in this environment: Our work with governments around the world suggests that in addition to the right motivation there are three key personal traits that predict success of lateral hires in such roles.

The first is resilience. Government bureaucracy can be tough on outsiders; it is essential to have the ability to persevere in the face of constant pulls and pressures and aligning multiple stakeholders. Successful lateral hires also have a high level of curiosity. They acknowledge that they don't have all the answers, are eager to learn and model their behaviour accordingly. These candidates know that while they may have many useful new ideas, they also have much to learn from career civil servants and that government has its own systems, formal and informal, that must be grasped before any innovations can be proposed. Finally, they have the ability to engage others. The ability to build consensus among stakeholders is essential.

Less is more when it comes to selection panels: The government screening process traditionally includes appearing before a section panel of three to five interviewers, who each take their turn investigating topics they have divided between themselves. Unfortunately, this approach often results in only a surface-level understanding of the candidate. We have found that one-on-one or two-on-one interviews allow for a much more meaningful exploration of key points of a candidate's career, their mindset and approach. More focussed interviews should be supplemented with extensive referencing with finalist candidates. This combination of data will provide insight into a candidate's character, integrity and moral compass — all critical qualities for government roles.

Accelerate the new hire's integration: Successful recruiting is only part of the equation; the selected lateral hire must also be primed for success in his or her new organisation. We were able to demonstrate the benefits of a systematic approach with a senior executive that we hired for the cabinet of a European country. We started by identifying cultural differences between the executive's old and new

environments and helped develop strategies the executive could use to navigate this change. We then created an extensive playbook with detailed profiles of the management team outlining each person's priorities and concerns, and provided coaching to help the executive best position himself with his new peers.

India's lateral entry programme has the potential to introduce new thinking and new expertise into key ministries. Leveraging on lessons learned elsewhere will allow India to more completely draw from the country's rich array of talent while maintaining the objectivity necessary to preserve the public trust.
